इकाई 11 मीरा का काव्य और समाज

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 मीरा कालीन रूढ़िगत सामंती समाज और नारी पराधीनता

11.2.1. वर्णव्यवस्था

11.2.2 महिलाओं की स्थिति

11.3 मीरा का सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

11.4 मीरा का जीवन संघर्ष

11.5 कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति

11.6 मीरा के गिरधर नागर

11.7 मीरा का विरह वर्णन

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास/प्रश्न

11.0 उद्देश्य

सगुण भक्ति के अन्तर्गत आपने सूरदास की कविता का अध्ययन किया। इस इकाई में हम मीरा के काव्य और समाज का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप:

- मीराकालीन समाज और नारी पराधीनता का उल्लेख कर सकेंगे ;
- मीरा के सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह से परिचित हो सकेंगे ;
- मीरा के जीवन संघर्ष को जान सकेंगे ;
- कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति के स्वरूप को पहचान सकेंगे ;

11.1 प्रस्तावना

मीरा पन्द्रहवीं शताब्दी में संपूर्ण भारत में व्यापक रूप से प्रसारित वैष्णव भक्ति आंदोलन की मूल्यवान कड़ी है। उनके काव्य में भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील अन्तर्वस्तु अपनी समग्रता में उद्घाटित है। इसे हम वर्ण व्यवस्था और नारी पराधीनता का संरक्षण करने वाले धर्म, शास्त्र और सामाजिक विधि-विधान के विरोध के रूप में देखते हैं। वस्तुत: मध्यकालीन समाज में धर्म ने सामान्य जनता की मुक्ति के हित में काम न करते हुए घोर शुचितावाद और बाह्याचार को बढ़ावा देकर सामाजिक वैषम्य को और गहरा किया। धर्म, शास्त्र, पुराण आदि ने निम्न वर्णों तथा प्रत्येक वर्ण और वय की स्त्री के लिए कुलीन जाति के पुरूषों की सेवा और अभ्यर्थना को सुनिश्चित करने वाले कर्म, भाग्यफल और पुनर्जन्म विषयक सिद्धान्तों का निर्माण किया। इस प्रकार उन शास्त्रों ने वर्ण व्यवस्था का सबसे मजबूत दार्शनिक आधार तैयार किया। यही कारण है कि मनुष्य और मनुष्य में किसी प्रकार का भेद न मानने वाले भक्ति आंदोलन के लिए ऐसे धर्म और इसकी समर्थक प्रणालियों का विरोध अनिवार्य हो गया। भक्ति आंदोलन का मुख्य आधार धार्मिक विचार या दर्शन नहीं था। इसके भीतर वे सभी सामाजिक शक्तियां सक्रिय थीं जो वर्ण विभाजित सामंती समाज में मनुष्य की मुक्ति के मूल्यवान सवालों के प्रति केन्द्रित थीं। बौद्ध, जैन धर्मों के साथ-साथ सिद्ध संतों, दक्षिण के आलवार भक्तों तथा रामानुजाचार्य, रामानन्द, मध्वाचार्य, नामदेव और चैतन्य महाप्रभु आदि महान संतों ने समय-समय पर इस ब्राह्मण-पुरोहित वर्चस्व वाली वर्ण व्यवस्था से कठिन संघर्ष किया है। कबीर, रैदास, तुलसी, जायसी और मीरा जैसे भक्त कवियों को मध्ययुगीन सामंती रूढ़ियों के विरोध की क्रांतिकारी विरासत इन्हीं आचार्यों और संतकवियों से प्राप्त हुई।

भक्ति युग को व्यापक लोकजागरण् का युग कहा जाता है। भक्ति काव्य में मध्ययुगीन सामंती जड़ताओं के विरोध के साथ-साथ समाज और संस्कृति के पुनर्निर्माण की चेतना विद्यमान है। भक्त कवियों की

सबसे बड़ी शक्ति ईश्वर की सर्वव्यापकता व सर्वसुलभता की प्रतिष्ठा कर सामान्य जन में आत्मगौरव का बोध जगाना तथा उनकी मुक्ति आकांक्षा को प्रेरित करना है। इसके लिए उन्होंने जनता को सामंती समाज के धार्मिक-सामाजिक अन्तर्विरोधों के प्रति सचेत किया। उनके द्वारा विकसित ईश्वर के सगुण-निर्गुण स्वरूप में सामान्य जन के विषमतापूर्ण जीवन के प्रति गहरी करूणा और इस विषमता से मुक्ति का प्रयत्न था। इसलिए भक्त कवियों का यह ईश्वर स्वरूप तत्कालीन समाज के दलित-वंचित वर्गों में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और भक्तिकाव्य ने व्यापक आंदोलन का रूप ले लिया। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि मीरा की कृष्ण भक्ति में भी उनकी वैयक्तिक मुक्ति का प्रयत्न मात्र नहीं है, अपितु उसमें भी अपने समय के अमानवीय अन्तर्विरोधों की पहचान तथा उनसे संघर्ष का पक्ष सबल है। एक ओर तो उनके काव्य में सगुण-निर्गुण काव्य धारा की सम्पूर्ण परंपरा अपने सर्वश्रेष्ठ के साथ समाहित है तो दूसरी ओर वे कबीर, जायसी और तुलसी जैसे कवियों से और आगे बढ़कर मध्ययुगीन समाज में नारी की दारूण स्थिति के प्रति प्रश्न उठाकर भक्तिकाव्य धारा में नारी मुक्ति चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष जोड़ती हुई उसकी सामाजिक भुमिका को पूरा करती है। अन्य भक्त कवियों की तुलना में मीरा ने कम लिखा है किन्तु जो लिखा है उसमें उनके कठिन जीवन संघर्ष के साथ गहरी लोकोन्मुखता और भविष्य दृष्टि है। वृन्दावन-गोकुल जैसे नैतिक मानवीय मूल्यों से सजे हुए समाज का वे केवल स्वप्न ही नहीं देखती, अपितु उसके लिए संघर्ष भी करती है। राणा और छद्म कुलमर्यादा का पोषण करने वाले राणा कुल और समाज का विरोध करती हुई मीरा राजसत्ता के विरोध के साथ-साथ पुरूषसत्तात्मक सामंती समाज का विरोध करती है। अलग-अलग भागों और उपभागों में हम इन्हीं पक्षों का अध्ययन करेंगे।

11.2 मीराकालीन रूढ़िगत सामंती समाज और नारी पराधीनता

मीरा का समय सन् 1498 से 1545 तक माना जाता है। वे राजस्थान के प्रसिद्ध राठौर राजा जोधा जी के पुत्र राव दूदा जी की पौत्री तथा राव रत्न सिंह की पुत्री थीं। उनका विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र कुंवर भोजराज के साथ हुआ था। मीरा के समय में दिल्ली में लोदीवंश अपनी जड़ें जमा रहा था। इब्राहिम लोदी के शासनकाल तक उसकी निरंकुशता के कारण लोदियों की राजनैतिक शक्ति बिखरने लगी थी। सन् 1526 में बाबर ने इब्राहिम लोदी को पराजित किया और उसके द्वारा मुगल सल्तनत की नींव पड़ी। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी से छिटपुट आक्रमणों और लूटपाट के जरिये भारत में प्रवेश करने वाले अरबों, तुर्कों और अफगानों के द्वारा भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ। मुगल सत्ता के केन्द्र में मजबूत होने के साथ ही इस्लाम को महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति प्राप्त होती गयी। राजसत्ता और धर्माचार्यों द्वारा प्रचारित इस्लाम में हिन्दू धर्म के समान ही कट्टरता और भेदभावपरकता थी। इस्लामी धर्माचार्यों की अपेक्षा सूफी संतों ने हिन्दू-मुस्लिम जनता से ज्यादा निकटता प्राप्त की। वे इस्लाम के मनुष्य और मनुष्य के बीच बराबरी के संबंध के कायल तथा बाह्याचारों और धर्म के रूढ़िवादी रूप के विरोधी थे। मनुष्य और ईश्वर में कोई भेद न मानते हुए सांसारिकता और सत्ता से निरपेक्ष होने के बावजूद वे धर्म और राजनीति के अमानवीय रूपों के तीव्र आलोचक थे। उनका जीवन और सिद्धांत मनुष्य और मनुष्य में समानता के विश्वास पर आधारित था। यही कारण था कि प्रायः ये संत मध्ययुगीन भारत के किसान-कारीगर वर्गों के गहरे संपर्क में थे। शासक वर्गों से अपने किसी हित या महत्वाकांक्षा के कारण जुड़ने के लोभ से परे होने के कारण ही ये समाज के धार्मिक-सामाजिक अन्तर्विरोधों के प्रति आक्रामक थे। सूफी संतों की उलमाओं या राजनैतिक आकाओं के मुंह पर खरी-खरी सुनाने के अनेक किस्से लोक में आज भी प्रचलित हैं। भक्ति आंदोलन पर इन सूफी संतों के क्रांतिकारी विचारों का भी प्रभाव पड़ा है। कबीर, दादू, रज्जब तथा जायसी आदि संत कवियों पर यह प्रभाव देखा जा सकता है। मीरा की भक्ति में भी सूफियों की सी अनुरक्ति की दृढ़ता और निर्भय तन्मयता देखी जा सकती है।

11.2.1 वर्ण व्यवस्था

इस्लाम के बढ़ते प्रभाव के कारण वर्ण विभाजित भारतीय समाज में नयी जटिलतायें पैदा हो रही थीं। उच्चकुलीन वर्णों को अपने वंश और रक्त की शुचिता की चिंता थी।

ब्राह्मणों ने, जिन्होंने प्राचीन काल से ही स्वयं को देवताओं के समकक्ष और वर्णाश्रम धर्म का रक्षक घोषित कर रखा था, इन नयी परिस्थितियों में हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए जातिभेदपरक अधिक कठोर

नियमों और विधिनिषेधों की रचना की। वर्णव्यवस्था की अमानवीय कठोरता से त्रस्त निम्न जातियां इस्लाम के मनुष्य और मनुष्य के बीच समानतामूलक विचारों से आकृष्ट हो धर्मान्तरण की ओर चली गई। इस प्रकार मुस्लिम धर्म ग्रहण करने वाली अधिकांश जातियां कपड़ा बुनने वालों, चमड़े का काम करने वाले कारीगर, शिल्पी वर्ग की थीं, जिन्हें हिन्दू समाज में अस्पृश्य समझा जाता था। हालांकि मुस्लमान हो जाने के बावजूद इन जातियों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। उन्हें अब भी गुलामों की तरह प्रभुवर्ग की सेवा करनी थी। निम्न जातियों को शिक्षा प्राप्त करने या स्वतंत्र संपत्ति रखने का अधिकार नहीं था। प्राचीन काल से ही शिक्षा अध्यापक होते थे। धार्मिक आचार-विचार और कर्मकाण्ड संबंधी निर्देश इस शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग थे। इस प्रकार शिक्षा का संबंध भी शूद्रों को हीन स्थिति में बनाये रखने वाली जाति व्यवस्था से था। मात्र शिक्षा ही नहीं, अपितु न्याय व्यवस्था और सेना-का कार्य भी उच्चवर्ग व प्रभुत्वशाली वर्गों के आर्थिक-सामाजिक हितों की रक्षा का था। समस्त उत्पादन का बोझ निचली जातियों के कंधों पर था तथा उच्चवर्ग के राजा, सामंत, सुल्तान आदि इसके उपभाग के लिए थे। मुगल शासकों को अपने उपभोग के लिए ज्यादा कलात्मक विलासिता वस्तुयें अपेक्षित थीं। इसके लिए बाहर से कारीगर, शिल्पी, सैनिक आदि आये। इन तमाम जातियों के प्रवेश से भारतीय समाज में जातिव्यवस्था संबंधी नयी उलझनें पैदा हुई। धर्म की प्रकृति संकीर्ण होती गई तथा समाज में रूढ़िवादिता का जोर बढ़ा। जन्म, कर्म, नियति, भाग्यफल, पुनर्जन्म, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र विषयक धारणाओं ने हिन्दू समाज के लिए नयी जकड़ने पैदा कीं। धर्म की इन्हीं अनवरत सीमित होती हुई भूमिकाओं की पहचान करते हुए भक्ति आंदोलन सामने आया। जिस ईश्वर को हिन्दू-मुस्लिम धर्माचार्यों ने वंचित-विपन्न जनता के लिए आंतक बना कर प्रस्तुत किया था उसी ईश्वर को सूफी संतों और निर्गुण-सगुण भक्तों ने समूची वर्ण-व्यवस्था और स्त्री पराधीनता की सामंती रूढ़ियों को चुनौती देने वाली शक्ति के रूप में विकसित किया।

11.2.2 महिलाओं की स्थिति

वस्तुत: सामंती समाज में शुद्र और स्त्री के दमन का अनिवार्य संबंध श्रम के शोषण और संपत्ति के एकाधिकार से है। इस समाज में स्त्री पराधीनता की जड़ें बहुत गहरी थीं। शुद्र के शोषण के पीछे तो वर्ण व्यवस्था का शुचितावाद काम कर रहा था, किन्तु स्त्री चाहे उच्च वर्ण की हो या निम्न वर्ण की सर्वत्र पराधीन और शोषित थी। वर्णव्यवस्था के सूत्रधार मनु ने प्रत्येक वय की स्त्री की पराधीनता को समाज के लिए अनिवार्य बताया। मर्तृहरि ने स्त्री को पुरूष के पतन और विनाश के ओर ले जाने वाली घोषित किया। पुरूषसत्तात्मकता की इस निरंतर मजबूत होती हुई प्रवृत्ति का ही प्रभाव था कि कबीर जैसे संत कवि, जो वर्णव्यवस्था के कटु आलोचक थे 'स्त्री' के संबंध में प्राय: ऐसे सामंती अन्तर्विरोधों से मुक्त नहीं थे। ध्यान देने की बात है कि 'स्त्री' को माया स्वरूप मानते हुए उन्होंने भर्तृहरि की धारणा का ही समर्थन किया। वैदिक युग या उसके बाद बौद्धकाल तक महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा के उल्लेख मिलते हैं, किंतु यह स्थिति प्राय: उन स्त्रियों तक सीमित है जो उच्चवंशीय थीं। प्राय: ब्राह्मण स्त्रियों को विदुषी, उपाध्याया या आचार्य होने का गौरव प्राप्त था। वैदों, संहिताओं, धर्मसूत्रों या पुराणों में स्त्री स्वाधीनता का सहज समर्थन नहीं है। महाभारत में भी स्त्री की स्वतंत्रता का विरोध किया गया है। इसी प्रकार की स्त्री निंदा रामायण में भी मिलती है। उसमें स्त्री को धर्महीन, चपल, तीक्ष्ण तथा भेदकर बताया गया है। बौद्धसाहित्य भी स्त्री के प्रति सहज और उदार नहीं है। इस प्रकार पुरूष वर्चस्ववादी इन विचारधाराओं की जड़ें इतनी गहरी थीं कि इन्हें समाज के भीतर से चुनौती मिलना कठिन था। प्रथम शताब्दी आते-आते उच्च वर्ण में भी कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा और उपनयन प्रथा का अंत हो गया। यही नहीं प्राय: इसी समय से कन्या के अल्प आयु में विवाह की प्रथा भी जोर पकड़ती दिखाई देती है। मध्यकाल में इस्लाम के आगमन के पश्चात् की राजनैतिक उथल-पुथल ने स्त्रियों के लिए ज्यादा कठिन परिस्थितियों का निर्माण किया। राजपूत वंश में जौहर आदि की प्रथायें वंश की कुलीनता की रक्षा के लिए अनिवार्य हो गयी थीं। उच्च वर्ग की या राजपरिवारों की स्त्रियों का जीवन खाने-पहनने और आराम से रहने की दृष्टि से ज्यादा सुविधाजनक था, किन्तु उन्हें बाह्य समाज में घुलने-मिलने के अवसर नहीं थे। पर्दा उनके लिए अनिवार्य था। यह युग किसी भी स्थिति में स्त्री की स्वतंत्र आत्माभिव्यक्ति के प्रति अनुकूल नहीं था। ऐसे में मीरा की स्वतंत्र आत्माभिव्यक्ति इस समूची सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह का एक प्रखर बिगुल थी।

11.3 मीरा का सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

मीरा राजस्थान के राठौर राजवंश की पुत्रवधू तथा प्रसिद्ध सिसोदियावंश की कुलवधू थीं। मध्यकालीन राजपूत क्षत्रिय वंश राजाओं, सामतों और सैनिकों का वंश था। इनके अभ्युदयकाल में ब्राह्मणों द्वारा इनकी वीरता और शौर्य पर आधारित वंशावलियों की खोज की गयी। ये वंश युद्ध को अपने जीवन का सबसे बड़ा धर्म समझते थे। इनके समाज में सत्ता और संपत्ति से जुड़ी हुई मैत्री और बैर इतने प्रचलित थे कि इनके पास युद्ध को छोड़कर जीवन के किसी स्वाभाविक विधान के लिए प्राय: कोई गुंजाइश नहीं हुआ करती थी। उनके कुटुंब इस युद्ध की छाया में पलते थे। परस्पर शत्रुता के निरंतर दबाव में रहने के कारण यह समाज अपनी स्त्रियों के प्रति बहुत रूढ़िवादी और अनुदार था। इनके वंश की स्त्रियों पर पिता और पति, दोनों के कुलों की मर्यादा का भार माना जाता था। अल्पायु में विवाह के अतिरिक्त विधवा के लिए सती हो जाने का विधान भी इसी मर्यादा की रक्षा के लिए था। कुल की मर्यादा इतनी संवेदनशील हुआ करती थी कि स्त्री द्वारा अपनी इच्छा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मात्र से इसके टूट जाने का खतरा था। इन्हीं कारणों से इन परिवारों की स्त्रियों पर अनेक बंदिशें लगायी जाती थीं। पिता या पति के घर में उसका स्थान अन्त:पुर था। उनका संवाद-व्यवहार या साक्षात्कार परिवार के पिता भाई, पति जैसे पुरूषों तथा परिवार की स्त्रियों या दासियों तक सीमित था। लज्जाशीलता, विनय और आज्ञाकारिता उसका धर्म थे। निजी इच्छाओं के त्याग और सहनशीलता आदि से उसकी महिमा आंकी जाती थी। उसके पतिव्रत्य, चरित्र और आचरण संबंधी विधि निषेध बड़े कठोर थे तथा इनमें किसी भी परिस्थिति में रियायत की संभावना नहीं थी।

मीरा को यही रूढ़िग्रस्त सामंती समाज मिला था। मीरा के पति कुंवर भोजराज तथा श्वसुर महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद राणा विक्रमाजीत उनका अभिवावक बन बैठा। मीरा की कृष्णभक्ति और साधु संगति जैसे गतिविधियों ने उसे कुपित किया और वह मीरा के प्रति अमानवीयता की हद तक निर्मम होता गया। उसने मीरा के बाह्य समाज से मिलने-जुलने पर अनेक प्रकार से रोक लगाई। मीरा के पदों में इस राणा द्वारा उन पर पहरे बैठवाने और ताले जड़वा देने का उल्लेख आया है, किन्तु मीरा एक निर्भय स्वाधीनचेता स्त्री थी। मीरा ने अडिग रह कर राणा के अत्याचारों का सामना किया। मीरा की स्वाधीनता से राणा का पूरा नियंत्रण तंत्र अस्त-व्यस्त हो उठा था। राणाकुल की स्त्रियों ने भी मीरा की स्वाधीनता को स्वच्छन्दता माना और राणा के मीरा विरोध में सहायक हुई। मीरा के पदों में सास-ननद द्वारा प्रताड़ित होने के संदर्भ भी आये हैं। मीरा की भक्ति का सबसे बड़ा बाधक राणा विक्रमाजीत था। इसीलिए मीरा ने अपने पदों में सबसे ज्यादा इस राणा के अत्याचारों का वर्णन किया है। यह राणा विधवा मीरा का संरक्षक होने के साथ-साथ शासक भी था। उसके पास धन और सत्ता का बल तो था ही, इसके अतिरिक्त पुरूष होने के कारण उसे स्वाभाविक रूप से समाज में विशेष अधिकार प्राप्त थे। रूढ़िवादी सामंती समाज में राणा के अत्याचारों का समर्थन था। इस प्रकार राणा ने भगवद्भक्ति को जीवन का एक मात्र उद्देश्य मानने वाली मीरा को अनेक प्रकार से आतंकित किया। उसके प्रचार तंत्र ने मीरा के बारे में समाज में अपवाद भी प्रचारित किये, किन्तु मीरा इससे विचलित नहीं हुई, बल्कि कृष्ण के प्रति अपनी निष्ठा और समर्पण में और दृढ़ होती गई। मीरा के पदों में राणा पुरूषवर्चस्ववादी सामंती व्यवस्था का सबसे निरंकुश, अमानवीय और रूढ़िवादी चरित्र है। मीरा स्वरचित पदों को अपनी साधु मंडली में गाती थीं। वस्तुत: कृष्ण और कृष्ण भक्त ही मीरा का सबसे बड़ा संबल थे। मीरा के पदों की लोकप्रियता बताती है कि सामंती नैतिकताओं का संरक्षक राणाकुल और रूढ़िवादी समाज उनका कितना ही बड़ा विरोधी क्यों न रहा हो, सामान्य लोक के चित में मीरा की सहज स्वीकृति थी। इस लोकस्मृति की परंपरा से भी हमें मीरा की वह छवि प्राप्त होती है जो स्वाधीन, गरिमामयी और साधु है। इस लोक की शक्ति से ही मीरा जैसी विधवा स्त्री ने राणा और समस्त स्त्री विरोधी समाज का सामना किया होगा। मीरा ने अपने पदों में राणा के प्रत्येक अत्याचार का भेद खोलकर उसे सीधी चुनौती दी। उन्होंने उसके प्रत्येक कपट का सिर्फ सामना ही नहीं किया, अपितु अपनी निर्भयता से उसके सत्ता और शक्ति के अहंकार को बौना कर दिया।

मध्यकालीन सामंती समाज में राजपूत-क्षत्रिय जातियों के पुरूषार्थ को 'ज़र, ज़ोरू और ज़मीन' के भोग के संदर्भ में परिभाषित किया जाता था। ऐसे वंश की विधवा स्त्री का अपने परिवार के संरक्षक पुरूष की खुली अवहेलना कितनी साहसपूर्ण रही होगी। मीरा ने राणा का नाम लेकर उसे धिक्कारा तथा

स्पष्ट कहा कि वह किसी भी उपाय से उन्हें उनके आराध्य कृष्ण की भक्ति से डिगा नहीं सकता। चरित्र हत्या को सामंती समाज अपना सबसे बड़ा हथियार समझता था। राणा ने भी अपने स्वतंत्र आचरण की घोषणा करने वाली मीरा की बदनामी की होगी। इन प्रसंगों से मीरा और दृढ़ हुई और उन्होंने राणा को स्पष्ट चेतावनी दी कि -

'राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं चलूंगी चाल अपूठी'

मीरा ने सत्संग की निंदा करने वाले को दुर्जन माना है और वे उन्हें भी साफ-साफ धिक्कारती हैं। पति को परमेश्वर करने वाले सामंती नैतिकता की कोई परवाह न करते हुए मीरा ने 'गिरधरनागर' को अपना सच्चा प्रीतम घोषित किया। मीरा की भक्ति की रीति न्यारी थी। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कृष्ण के रूप में उन्हें अविनाशी सुहाग प्राप्त हुआ है। कृष्ण का अपने योग्यपूर्ण वर घोषित करते हुए उन्होंने राणा वंश की स्त्री को नियंत्रण में रखने वाली आचार संहिता को भारी चोट पहुंचाई। मीरा की स्वाधीनता राणाकुल के लिव अनवरत भारी संकट बनती गई होगी। यही कारण है कि राणा ने मीरा की हत्या के भी अनेक उपाय किये। मीरा का भक्ति हठ, उनकी स्पष्टवादिता और रूढ़िविरोध जड़ीभूत समाज के लिए चुनौती बनते गये। वस्तुत: मीरा ने बार-बार जिस कुल मर्यादा को तोड़ने की बात कही है वह स्त्री दमन और शोषण में लगी वह छद्म कुलमर्यादा थी जो उसे जीवित व्यक्तित्व न मानकर निष्प्राण वस्तु समझती थी। मीरा के कुटुंब की स्त्रियों को गहने, कपड़े, खाने-सोने का सुख तो था, किन्तु उनका अपने शरीर, अपनी आत्मा पर कोई अधिकार नहीं था। यह अनायास नहीं है कि मीरा ने उन्हीं कृष्ण को आराध्य माना जिन्हें द्रौपदी ने अपने घोर संकटकाल में अपनी रक्षा के लिए पुकारा था। मीरा के लिए भी उनका परिवार तथा उनके समय का रूढ़िग्रस्त समाज अपनी जड़ीभूत मान्यताओं के साथ कठोर होता गया था। मीरा ने भी गोपिका वल्लभ कृष्ण में ही नारी स्वाधीनता का संपूर्ण विधान अनुभव किया। उन्होंने राणा कुल द्वारा दिये गये समस्त उपभोगों का त्याग करते हुए अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को स्वतंत्रता के सार्थक अर्थ में चरितार्थ किया। भक्ति और साधु संगति में मीरा का भावलोक ही समृद्ध नहीं हुआ था, अपितु उनकी दृष्टि व्यापक और उदार होती गयी थी। इसीलिए अपनी भक्ति और व्यक्तित्व पर चौतरफा प्रहार झेलते हुए भी वे कभी अपनी निष्ठा से विचलित नहीं हुई। देखा जाये तो राजसत्ता के रूप में शासक राणा, वंश की कुलीनता की दावेदारी लेकर राणा कुल के स्त्री-पुरूष और शेष रूढ़िवादी समाज बहुत संगठित होकर मीरा पर प्रहार कर रहे थे, किन्तु मीरा न राणा से आतंकित थी और न उन्हें छद्म कुलीनता की कोई परवाह थी। 'स्त्री' के प्रति अमानवीय विधि-निषेधों से लैस रूढ़िवादी समाज के लिए तो उनके प्रखर स्वाभिमानी व्यक्तित्व की आंच ही यथेष्ट थी। इस प्रकार मीरा अपने समय के समाज की सामंती पतनशीलता से संघर्ष करती हुई एक निर्भय स्वाधीन व्यक्तित्व के रूप में मध्ययुगीन भक्तिकाव्य धारा में अपनी एक अलग और अनूठी छाप छोड़ती है। उनमें एक असाधारण स्त्री का ग्रहण और त्याग का विवेक है। वे स्वाधीन तो हैं, किन्तु स्वछंद नहीं है। वे गोकुल-वृन्दावन जैसे मानवीय गुणों से युक्त साधु समाज का स्वप्न देखती है। उनका संघर्ष असाधु, अन्याय और असत्य से है। राणा में ये तीनों प्रवृत्तियां मौजूद हैं। मीरा इन प्रवृत्तियों पर तीखी चोट करती हैं। कहती हैं -

विध विधणा री न्यारा।। टेक ।।
दीरघ नेण मिरघ कूं देखां कणलण फिरता मारा।
उजलो बरण बागलां पावां कोयल वरणां कारा।
नदयां नदयां निरमल धारां समुंद करयां जल खारां।
मूरल जण सिंघासण राजा पण्डित फिरतां द्वारा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर राणा भगत संपारा।

इस पद से मीरा की विकसित सामाजिक चेतना और राजनीतिक विवेक का ज्ञान होता है। यहां मीरा राजसत्ता के दमनकारी अमानवीय रूप को उद्घटित करने के साथ-साथ अन्याय और दमन के लिए संगठित जड़ समाज की भी पहचान कराती हैं। यहां मध्ययुगीन समाज की विसंगतियों के प्रति मीरा का स्वर तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक है। वस्तुत: विसंगत यथार्थबोध के प्रति मानवीय चित्र की सबसे स्वाभाविक

अभिव्यक्ति व्यंग्य ही है। मीरा के कई पदों में व्यंग्य की एक गहरी अन्तर्निहित प्रकार की धार पहचानी जा सकती है। ऐसे पदों का संदर्भ सदैव उनके समय का समाज और उसका अमानवीय यथार्थ है।

मीरा ने केवल राणा, राणाकुल या रूढ़िवादी समाज से ही संघर्ष नहीं किया था। जैसा कि हम जानते हैं कि उन्हें साधुवेश में आने वाले असाधुओं से भी जूझना पड़ा था। वैष्णव भक्तिधारा में भी कुछ ऐसी संकीर्णतायें थीं जिन्हें मीरा जैसी तपस्विनी नारी नहीं सह सकती थी। ऐसा ही एक प्रसंग मीरा के पुरोहित रामदास द्वारा वल्लभाचार्य जी का भजन गाने का है। मीरा ने उनसे ठाकुर जी का पद गाने का अनुरोध किया। पुरोहित ने इसे वल्लभाचार्य जी का अपमान समझ मीरा को घोर अपशब्द कहे। इस प्रकार के असाधुओं से मीरा का पाला पड़ता ही रहता था किन्तु उनमें साधु और असाधु को पहचानने का विवेक तो था ही, साथ ही अद्‌भुत क्षमाशीलता और विनम्रता भी थी। अन्याय से प्रत्येक स्तर पर जूझने वाली मीरा की प्रखरता बहुत मर्यादित थी। उनके व्यक्तित्व का संयम-नियम असाधारण था तथा इससे उनके अन्याय विरोध की धार और तीखी होती थी।

11.4 मीरा का जीवन संघर्ष

मीरा ने जीवन-पर्यन्त बहुत कठिन विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष किया। लगभग 4-5 वर्ष की आयु में ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। मातृविहीन मीरा को उनके पितामह राव दूदा जी ने बहुत स्नेह और यत्न के साथ पाला। राव दूदा जी वीर होने के साथ सहृदय और वैष्णवचित्त व्यक्ति थे। मीरा का बाल्यकाल इन्हीं पितामह के संरक्षण और सानिध्य में बीता। राव दूदा जी ने अपने बड़े पुत्र वीरमदेव जी के पुत्र जयमल के साथ मीरा की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की। इस प्रकार मीरा को बाल्यपन से ही व्यक्तित्व के विकास का जो वातावरण मिला वह रूढ़िवादी वर्जनाओं से मुक्त सहज स्नेह और सुरक्षा से युक्त था। यही कारण है कि मीरा का व्यक्तित्व सामंती विधि निषेधों द्वारा दमित स्त्री का सा न बन कर स्वतंत्रता साहसपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में विकसित हुआ। उनके व्यक्तित्व में दृढ़ता, सर्जनात्मकता और अन्याय के विरोध जैसे असाधारण मानवीय गुणों का निरन्तर विकास होता गया। निरर्थक वर्जनाओं से अप्रभावित उनकी दृष्टि साधु, असाधु, न्याय-अन्याय और करणीय तथा अकरणीय को पहचानने के प्रति स्पष्ट होती गयी थी। मीरा में कोई छद्‌म नहीं था और न ही कोई भय। कुल परिवार और संकीर्ण समाज के अनवरत विरोध के बावजूद वे अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुई। जैसा कि हमने देखा है कि मीरा के कृष्ण के प्रति अनुराग का निंदक केवल राणा परिवार ही नहीं था, सामंती जड़ताओं से ग्रस्त समाज तो था ही, अनेक वैष्णव साधु भी मीरा को शंका और विद्वेष की दृष्टि से देखते थे। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में कुछ ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनमें मीरा के प्रति इन कपटपूर्ण कृष्णभक्तों की कटुता का ज्ञान होता है। मीरा ने बड़े साहस के साथ किसी व्यक्ति, संप्रदाय या समाज से अपनी भक्ति और अभिव्यक्ति के प्रति कोई समर्थन न चाहते हुए साफ कहा है कि -

"चोरी न करस्यां जिव न सतास्यां कोई करसी म्हारो कोई।
गज से उतर के खर नहीं चढ़स्यां, ये तो बात न होई।"

मीरा को असंख्य बाधाओं से जूझना पड़ा था। मातृ-वियोग उनका एकमात्र शोक नहीं था। उनके पितामह दूदा जी की छत्रछाया भी कुछ ही दिनों में समाप्त हो गयी। पिता राव रत्न सिंह लड़ाईयों में व्यस्त थे। दूदा जी के बाद राव वीरभदेव जी ने अवश्य मीरा के पालन-पोषण पर ध्यान दिया। उन्हीं के प्रयत्न से मीरा का विवाह मेवाड़ के कुअंर भोजराज जी के साथ हुआ। मीरा का विवाहित जीवन सुखी था। उनके पति उदार हृदय व्यक्ति थे, अतः पति के जीवित रहते मीरा के लिए श्वसुर कुल विपरीत नहीं था। किन्तु पति की मृत्यु के बाद जब अनवरत दैवी आघातों से आहत मीरा ने स्वयं को कृष्णभक्ति में डूबा देना चाहा तब यही श्वसुर कुल विधवा मीरा पर भारी विपत्ति की तरह टूट पड़ा। पति की मृत्यु के कुछ ही वर्षों बाद मीरा के श्वसुर राणासांगा का भी देहांत हो गया। मेवाड़ का उत्तराधिकार महाराणा रत्नसिंह को मिला जो कुछ ही समय तक जीवित रहे। उनके बाद मेवाड़ का शासन मीरा के देवर विक्रमाजीत सिंह ने संभाला। विक्रमाजीत सिंह बहुत अनुदार और संकीर्ण चित्त व्यक्ति थे। पति की मृत्यु के बाद मीरा अपना सारा समय भगवद्‌भक्ति, साधु-संगत और कीर्तन भजन

में बिताने लगीं। मीरा के इस आचरण को सामंती नैतिकताओं में अवरूद्ध राणा परिवार अमर्यादित मानता था। उनसे सामान्य विधवाओं के से पूजा-पाठ, व्रत-तीर्थ तथा दान आदि की अपेक्षा की जाती थी। मीरा ने इन नियमों और वर्जनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप मीरा के प्रति राणा कुल के अत्याचार बढ़ते गये। पुरूषसत्तात्मक रूढ़िवादी समाज को न तो मीरा की कृष्ण भक्ति समझ में आती थी और न ही उनकी स्वाधीनता। यही कारण है कि मीरा की कृष्ण के प्रति तन्मयता को शंका की दृष्टि से देखा गया और उन पर अनेक लाछन लगाये गये। इन प्रतिक्रियाओं से बहुत मर्माहत होकर मीरा ने कहा -

'बूझया माणे मदण बावरी स्याम प्रीत म्हां कांचा।
विखरो प्यालो राणां भेज्यां आरोग्यांणा जांचां।'

मीरा को सतसंग की अनुमति नहीं थी। गिरधर नागर के प्रति मीरा का पावन समर्पण सांसारिकता में फंसे कुबुद्धिजन की समझ से परे था। स्त्री को भोग की वस्तु समझने वाला सामंती चित्त मीरा के अद्भुत आत्मविकास की कल्पना ही नहीं कर सकता था। उनके अनुभव में लौकिक प्रेम, कलह और गहनों-कपड़ों में रमने वाली स्त्रियां थीं। मीरा के समान कठोर अत्याचार झेल कर अपने पथ पर अडिग रहने वाली स्त्री उनके लिए आश्चर्य भी थी और संकट भी। मीरा की भी स्वतंत्रता के दमन के लिए सुख-साज और कपड़े-लत्ते, गहने आदि के नाना प्रलोभन दिये गये थे। इनके काम न करने पर कुटुंबीजन की ओर से उन्हें चेतावनियां भी मिलीं। राणा ने पहरे बैठा दिये, ताले जड़वा दिये। सास-ननद ने गालियां दी। राणा के विष भेजने का उल्लेख मीरा के अनेक पदों में आया है। मीरा की स्वाधीनता तत्कालीन पुरूषसत्तात्मक समाज के लिए बड़ी चुनौती रही होगी। इस समाज ने राणा कुल के अत्याचारों का साथ देते हुए मीरा की अनेक प्रकार से निंदा की। उनकी हंसी उड़ाई। मीरा ने कहा--

'कड़वा बोल लोक जग बोल्यां करस्यां म्हारी हांसी।
आंबां की डालि कोइल इक बोले मेरो मरण अरू जग केरी हांसी'।

मीरा की आत्माभिव्यक्तिपरक पदों में राणा दमनकारी राजसत्ता का प्रतीक है। मीरा के समय की समस्त स्त्री स्वाधीनता विरोधी सामंती शक्तियां इस राणा के साथ है। यहां तक कि मीरा का वह पुरोहित भी जिसने मीरा के एक सहज व्यवहार पर कुपित हो मीरा को अपशब्द कहे। आज का आधुनिक कहा जाने वाला समाज भी स्त्री स्वाधीनता के प्रति सहज नहीं है। मीरायुगीन समाज में एक स्त्री की साधुसंगत में रमने की गतिविधि ने कितनी ही दृष्टात्माओं को आकृष्ट किया होगा। मीरा का संघर्ष अपने समय की इन रूग्ण प्रवृत्तियों से भी था। उन्होंने बड़ी सजगता और आत्मबल के साथ ऐसे छद्म साधुओं का सामना किया। ऐसी अनेक प्रतिकूलताओं से जूझती हुई मीरा ने अपनी श्रेष्ठ भक्ति का विश्वास सामान्य जन में तो जगा लिया, किन्तु जड़ीभूत सामंती समाज उन्हें भला बुरा कहने से बाज नहीं आया। वस्तुत: दोहरी नैतिकता वाले पुरूषसत्तात्मक समाज का सबसे कारगर हथियार चरित्र की दृष्टि से स्त्री की छवि को धूमिल कर देना है। यह हथियार मीरा पर पूरी क्रूरता के साथ आजमाया गया। समाज की इन प्रवृत्तियों पर सीधी चोट करते हुए मीरा ने कहा --

'नहिं सुख भावै थांरो देसलड़ो रंगरूड़ो ।।टेक।।
थारे देसां में राणा साधु नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।'

इस प्रकार मीरा में सामंती संकीर्णताओं को पहचानने और उन पर चोट करने का साहस था। राणा के नाना अत्याचारों के बदले उसे सीधी चेतावनी देते हुए मीरा ने कहा --

'सीसोधो रूठ्यो म्हारो कोई करलेसी।
म्हे तो गुण गोविन्द का गास्यां, होमाई ।।टेक।।
राणो जी रूठ्यां बारों देख रखासी।
हरि रूठ्यां कुम्हलास्यां हो भाई।"

इस प्रकार मीरा ने अपने समय के नारीविरोधी सामंती समाज के अत्याचारों को मौन होकर सहने के बजाय उनका साहसपूर्वक सामना किया। राणा विक्रमाजीत सिंह केवल मीरा के प्रति ही निरंकुश नहीं था। वह एक बुरा शासक भी था। सन् 1532 से 1534 के बीच गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने दो बार मेवाड़ पर आक्रमण किया। दूसरी बार उसे विजय प्राप्त हुई तथा चित्तौड़ को उसने अपने अधीन कर लिया। इस समय तक मीरा के प्रति राणा के अत्याचारों की बात दूर-दूर तक फैल चुकी थी। राव वीरभदेव जी ने मीरा को भेड़ता बुला लिया। जयमल जी और मीरा में परस्पर स्नेह और आदरभाव था ही। मीरा को मायके में सम्मान और जीवन की अनुकूलतायें प्राप्त तो हुई, किन्तु भेड़ता राज्य की जोधपुर से बढ़ती हुई अनबन के चलते भेड़ते का जीवन शांतिपूर्ण नहीं रह सका। सन् 1538 में जोधपुर नरेश राव मालदेव ने भेड़ता पर अधिकार कर लिया और इन घटनाओं से मीरा की संसार के प्रति विरक्ति और प्रगाढ़ हो उठी। लगभग इसी के आसपास मीरा ने अपने दोनों पारंपरिक आश्रम तोड़ दिये, अर्थात् श्वसुर गृह के साथ-साथ पितृगृह भी। वे तीर्थ यात्रा पर चल पड़ी। कुछ दिनों तक वृन्दावन में रहीं उसके बाद द्वारका गयीं। कहते हैं द्वारका में ही उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। यद्यपि मीरा के गृहत्याग के बाद भेड़ता और मेवाड़ ने उन्हें लौटाने के बहुत प्रयत्न किये, कन्तु मीरा पुनः वहां लौट कर गयीं हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

इस प्रकार मीरा ने असह्य यातनाओं से भरे हुए जीवन को बड़ी गरिमा और स्वाभिमान के साथ व्यतीत किया। सामंती समाज की रूढ़ियां और छविभंजक प्रवृत्तियां मीरा का कुछ न बिगाड़ सकीं। लोकचित में मीरा की पावन असाधारण छवि आज भी विद्यमान है।

11.5 कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति

मीरा की कृष्ण भक्ति श्रीकृष्ण के सगुण स्वरूप के प्रति माधुर्य भाव की भक्ति है। इस भक्ति को प्रेमाभक्ति या मधुरा भक्ति भी कहा जाता है। मधुराभक्ति का प्रधान भाव रति है। इस 'रति' को लौकिक प्रेम से भिन्न करने के लिए सगुण भक्तों ने इसे 'उज्वल रस' कहा है। 'रति' का मूल स्वभाव सर्वाधिक मानवीय, तीव्र और प्रगाढ़ होता है। इसके अन्तर्गत प्रिय के प्रति चरम तन्मयता और निर्द्वन्द्व समर्पण होता है। इसलिए 'प्रेम' मात्र को ही व्यक्तित्व की स्वाधीनता की अभिव्यक्ति कहा जाता है। देह, मन और आत्मा की मानवीय स्वाभाविकताओं के अनुरूप घटित होते हुए इस प्रेम में अपने मार्ग की बाधाओं से लड़ने का अद्भुत नैतिक साहस होता है। मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति का यही स्वरूप है। यह भक्ति जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही मानवीय भी। माधुर्यभाव की भक्ति को सूर ने 'सुद्धा भक्ति' कहा है। उनके अनुसार --

'सुद्धा भक्ति मोहि को चाहै। मुक्ति हुं कौं सो नहि अवगा है।'

इस प्रकार इस 'सुद्धा भक्ति' में भक्ति का एकमात्र प्राप्य आराध्य है। भक्त अपने आराध्य को संसार से अपनी मुक्ति के लिए नहीं चाहता। मीरा के लिए भी उनकी 'कृष्ण भक्ति', साधन और साध्य दोनों है तथा वे परलोक, निवृत्ति अथवा मुक्ति की चिंता न कर कृष्ण के प्रति चरम एकात्म की दृढ़ आकांक्षा करती हैं। जीवन, समाज या संसार के प्रति उनका वैराग्य भी संत, भक्त कवियों से भिन्न प्रकार का है। वे जीवन के असाधु, अमानवीय और अन्यायपूर्व पक्ष के प्रति विरक्त हैं, किन्तु लोक जीवन का साधु, प्रेममय मानवीय पक्ष उन्हें प्रिय हैं। वे मनुष्य में सद्वृत्तियों के विकास की चिंता करती हैं इसलिए अन्याय और असत्य से उनका विरोध बहुत सीधा और तीव्र है। अन्यायी राणा को फटकारते हुए मीरा कहती है --

'नाहिं सुख भावै थांरो देसलड़ो रंगरूड़ो ।।टेक।।
थारे देसां में राणा साध नहिं छै, लोग बसै सब कूड़ो ।।

इसीलिए मीरा संत समाज से जितनी सुखी होती है संसार को देखकर उतना ही दुःख पाती है। नाभादास ने मीरा के भक्तिभाव को कृष्ण के प्रति गोपिका के प्रेम सदृश्य लिखा है। पुष्टिमार्ग के अन्तर्गत गोपीभाव की इस भक्ति को भक्ति का सर्वोत्कृष्ट रूप माना गया है। मीरा की भक्ति के सन्दर्भ

में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उसे सगुण-निर्गुण भक्ति के परिपाटीबद्ध स्वरूप के अन्तर्गत नहीं निर्धारित किया जा सकता।

मीरा के भावजगत के निर्माण में सगुण-निर्गुण भेद की कोई दखल नहीं है और न ही वे किसी गुरू विशेष या भक्ति के संप्रदाय विशेष में दीक्षित हैं। वे भक्ति आंदोलन के मुख्य सार 'ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण मात्र' को पहचानती है और इस दृष्टि से भक्ति की उस समूची परंपरा को आत्मासात करती है जिसमें जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास और चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ सिद्ध नाथ पंथी साधु और सूफीसंत भी हैं। मीरा की भावाभिव्यक्ति में जो वैविध्य मिलता है उसके मूल में इस समूची परंपरा का प्रभाव है। मीरा की भक्ति उनके व्यक्तित्व के समान ही सहज निराडंबर और रागपूर्ण है।

इस प्रकार यह भक्ति सगुण की अनेक विशेषताओं का अनुकरण करने के बावजूद कई प्रकार से उसका अतिक्रमण भी करती है। इस प्रकार के अतिक्रमण के संदर्भ प्राय: वही हैं जिन्हें सामने रख कर मीरा के निर्गुण भक्त या नाथपंथी परंपरा का भक्त सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। मीरा के एकमात्र अभीष्ट 'गिरधर नागर' है तथा उन्हें 'गिरधर नागर' से सच्ची प्रीत का प्रत्येक पंथ प्रिय है। कृष्ण को अनेक नामों से स्मरण करने वाली मीरा कहीं-कहीं उन्हें 'राम' या 'रमैया' पुकार बैठी है --

'सुन्दर स्याम सुहावणा, मुख देख्यां जी जैहो।
मीरां के प्रभु रामजी, बड़ भागण रौझं हो।।'

यहां ऐसा लगता है कि 'रामजी' से मीरा का अभिप्राय सुन्दर श्याम कृष्ण से ही है। मीरा के क अन्य पदों में भी 'राम' के लिए संबोधन है। प्राय: इस प्रकार के पदों का संदर्भ भक्त वत्सल भगवान के प्रति मनुष्य को प्रेरित और उद्‌बोधित करने का है। जैसे --

'लेतां लेतां राम नाम रे, लो कड़िया तो लाजा मरे है।'

या

'जूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत जाण,
ऊंच-नीच जाने नहीं, रस की रसीलड़ी।'

कहीं-कहीं मीरा की अनूठी भावतन्मयता के चलते राम और कृष्ण में अद्‌भुत मेल हो गया दीखता है। जैसे -

'देखत राम हसै सुदामा कूं देखत रामहसै' ।।टेक।।

वस्तुत: मीरा के लिए भक्त वत्सल राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं है। मीरा ने कृष्ण को 'जोगी,' 'जोगिया,' 'रावल' आदि संबोधन भी दिये हैं। इन संबोधनों के संदर्भ से ही मीरा पर नाथपंथी प्रभाव की बात कही जाती है। ऐसे पदों में मीरा की अपने आराध्य के प्रति प्रेम की तीव्रता दीवानगी की हद तक है। प्रेम की इस तीव्रता को सूफी संतों के प्रभाव से भी जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त मीरा ने कुछ पदों में 'सतगुरू' का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार के साक्ष्यों से मीरा को निर्गुणसंत परंपरा का प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है। यद्यपि मीरा कबीर, रैदास, नानक या पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों की तरह भ्रमणशील नहीं थी तथापि उनकी साधु मण्डली में प्रत्येक पंथ के साधु या भक्तजनों का स्वागत था। वहां 'सतसंग' होता था, भगवद्‌भक्ति विषयक विचारों का आदान-प्रदान भी होता रहा होगा। इसके अलावा गुजरात और राजस्थान सिद्धनाथ संतों की साधना और भाव प्रचार का महत्वपूर्ण क्षेत्र तो थे ही। तो इन समस्त प्रभावों से मीरा की भक्ति का स्वरूप निर्मित हुआ होगा।

मीरा की भक्ति में अन्य संत कवियों की भांति अध्यात्म की रहस्यवादी जटिलतायें प्राय: नहीं है। उनका भावजगत उनके व्यक्तित्व की ही भांति पूरी तरह से व्यक्त और प्रत्यक्ष है तथा वे अपने प्रत्येक भाव के साथ कृष्ण के प्रति सहज संबोधित है। इसके अतिरिक्त कबीर या तुलसी के समान मीरा के लिए काम,

क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य के पंच मकार या सांसारिक सुखों के प्रलोभन आदि कहीं समस्या नहीं है। वे इनसे सहज ही मुक्त है तथा आर्तजनों की सहज मुक्ति के लिए सर्वस्व समर्पण वाला भक्ति की रीति का विधान करती है। संसार से उनकी विरक्ति कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य भक्ति के समान ही सहज और निर्बाध है। मीरा की भक्ति का मूलाधार कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। इसके अतिरिक्त उनकी भक्ति में अन्य भक्त कवियों के समान दैन्यपूर्ण आत्मविगलन प्राय: नहीं है। मीरा का भावलोक व्यापक, उदात्त और समृद्ध है। उनकी भक्ति में कांता भाव के प्रगाढ़ रंग के अतिरिक्त कहीं-कहीं सख्य या दास्य भाव के भी रंग मिलते हैं, किन्तु आत्म-निवेदन के इन सभी रूपों में मीरा के उत्कट कृष्ण प्रेम के अलावा उनके जीवनानुभवों की सच्चाई और गहराई है। कृष्ण का अद्‌भुत अलौकिक सौन्दर्य मीरा की अनुरक्ति की मूल प्रेरणा और आकर्षण हैं। निरंतर प्रगाढ़ होती हुई इस अनुरक्ति के चलते मीरा कृष्ण के अनवरत सानिध्य का यत्न करती है। इस क्रम में उनकी भक्ति में पुष्टिमार्गीय भक्ति के भी कुछ लक्षण प्रकट होते हैं। जैसे प्रभु के स्वरूप और गुण का स्मरण, कीर्तन, प्रभु के पुरूषार्थ, लीला एवं भक्त हितकारी स्वरूप का निरूपण, उनकी वंदना, आत्मनिवेदन, नैकट्य की आकांक्षा की अभिव्यक्ति, सतसंग, तादात्म्य एवं समर्पण आदि। मीरा स्वयं अपनी भक्ति को 'भगति रसीली' कहती है। यह भक्ति उनके लिए 'अमर रस' का प्याला है जिसे पीकर वे दुर्मति, कालप्रकोप और नश्वर संसार से सहज ही मुक्त है। अपने भक्त रूप को गोपी भाव में अवस्थित मान मीरा ने कृष्ण से अपने जन्म-जन्मातंर के प्रेम की बात कही है। कृष्ण उनका अविनाशी सुहाग है। उन्हें अनेक बार मीरा पिव, भरतार, वर आदि संबोधन देती है। उनकी भक्ति में कहीं स्वकीया का अधिकार और आत्म-विश्वास है तो कहीं वे ऐसे प्रिय को परकीया की तरह उपालंभ भी देती हैं। मीरा प्रेम की ही नहीं दरद की भी दीवानी है। प्रिय से प्राप्त यह दर्द उन्हें प्रिय के समान ही प्रिय है। मीरा का भक्ति में अनुभव और उपदेश का सुन्दर एकात्म है। अपनी प्रेम साधना का चरम आकांक्षा के रूप में मीरा उस अगम्य देस में वास की इच्छा करती हैं जिसके निकट काल की भी गति नहीं है। कहती है --

'चालां अगम वा देस, काल देख्यां डरौं।
भरा प्रेम रा होज, हंस केल्यौं करौं।
साधा संत रो संग, इयाण जुगतां करां।
धरा सांवरो ध्यान चित्त उजलों करां।
साजा सोल सिंगार, सोणारो राखड़ौं।
सौंवलिया सू प्रीत, औरौं सूं आखड़ौं।।

मीरा के इस उद्‌गार में किंचित निर्गुण संतों के रहस्यवादी स्वर का भी स्पर्श है, किन्तु वह उनसे कम जटिल या अमूर्त है।

इस प्रकार मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति सगुण-निर्गुण भक्ति की समूची परंपरा के सार को आत्मसात करती हुई आध्यात्मिकता को मानवीय राग-विराग से संपन्न भावलोक सौंपती हुई अपनी अभिव्यक्ति में मीरा के ही समाज सहज किंतु अनूठी और असाधारण है। उसमें स्वानुभूति की वह तीव्रता और सच्चाई है जिसके द्वारा वह भक्ति आंदोलन में एक अनूठे रागात्मक स्वर का विधान करती है

11.6 मीरा के गिरधर नागर

मीरा के 'गिरधर नागर' सगुण भक्त कवियों के परम् आराध्य भगवान कृष्ण ही हैं। उनके समान ही वे उनके सगुण स्वरूप की लीलाओं का गान करती है। मीरा के पितामह राव दूदा जी वैष्णव भक्त थे। मीरा का पालन-पोषण और व्यक्तित्व निर्माण राव दूदा जी के वैष्णव संस्कारों के प्रभाव में ही हुआ। कहा जाता है कि मीरा को बाल्यकाल में ही गिरधर नागर का एक स्वरूप प्राप्त हो गया था और वह स्वरूप उन्हें अत्याधिक प्रिय था। इस संदर्भ में लोक में कई किंवदन्तियां भी प्रचलित हैं। एक प्रसंग मीरा की माता द्वारा उस स्वरूप को ही मीरा का वर बताने का भी है। संभवत: इन संयोगों से मीरा के बाल्यहृदय में कृष्ण के प्रति अनुरक्ति का बीज पड़ गया होगा जो उनके निरंतर कठिन होते जीवन का एक मात्र आधार या संबल बनता गया। कृष्ण को प्राय: वे 'गिरधर नागर' संबोधन देती है। संभवत:

मीरा को इस नाम में कृष्ण चरित्र की संपूर्णता का बोध होता है। 'गिरधर' में यदि उनके लोकरक्षक स्वरूप की अभिव्यक्ति है तो 'नागर' में अद्‌भुत लोकरंजक स्वरूप की। इस प्रकार मीरा ने कृष्ण की 'मोहिनी मूरत' में सत्य, शील और कर्म का मेल देखा है। यह सौंदर्य मानवीय और सकर्मक है। उनमें मानवोचितता और अलौकिकता का अद्‌भुत मेल है। मीरा उन्हें अपने सबसे निकट का सच्चा साथी मानती है तथा उनके प्रति अपने सुख-दुख: भरे जीवन के समस्त अनुभवों के साथ निर्द्वन्द्व भाव से व्यक्त होती है। कृष्ण मीरा के आराध्य हैं। अन्य भक्त कवियों के समान मीरा भी श्रीकृष्ण के लीलामय स्वरूप का ध्यान भजन या उनके प्रति आत्म निवेदन करती है, किन्तु मीरा का भावलोक प्रेमलोक है जिसमें वे आराध्य को उनके समस्त ऐश्वर्य और अलौकिकता के साथ निर्मित करन के बावजूद उनसे अपने सुख-दुख: का एक आत्मीय संबंध भी विकसित करती है।

मीरा के गिरधर नागर को हरि, स्याम, नंदलाल, बिहारी जी, मोहन, गोपाल, गोविन्द, दीनानाथ, ब्रजनाथ, जोगिया जी, गिरधरलाल, मनमोहन, रमैया, भुवनपति, नन्द कुमार, पिया, पिव जैसे कितने ही संबोधन दिये हैं। वे कहती हैं --

'म्हारां री गिरधर गोपाल, दूसराँ णाँ कूयां।
दूसरां णां कूयां साधां सकल लोक जूयां ।।टेक।।
माया छंड्या अन्ध छंड्यां छांड्यां सगों सूयां।
साधा ढिंग बैठ बैठ, लोक लाज खूयां।

गिरधर गोपाल मीरा के सर्वस्व हैं। वे स्वरूपवान और लोकहितकारी हैं। मीरा उनके अलौकिक सौन्दर्य के आगे प्रेम विवश हैं। उनका मुख सुंदर है। नेत्र कमल के समान हैं और दीर्घ नेत्रों की बांकी चितवन का तो कहना ही क्या। उनकी वाणी मीठी और सम्मोहन से भरी हुई है। सबसे बढ़कर तो उनकी वंशी का जादू है जिसके कारण प्रेम विवश मीरा उन पर बार-बार बलिहारी जाती है। ऐसे कृष्ण के क्षण भर भी विलग होना मीरा को सह्य नहीं है। वे उन्हें अपनी आंखों में बसा कर रखती हैं। वह छवि क्षण भाव को भी विस्मृत न हो इसके लिए मीरा अपनी पलकों को अचल कर लेने की बात कहती है। यही नहीं कृष्ण सदैव उनके हृदय में बसे हुए हैं और उनसे प्रतिपल उनका मिलन होता है। वे कहती हैं --

'स्याम मिलन सिंगार सजावाँ सुखरी सेज बिछावाँ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जावाँ।।

ऐसे गिरधर को रिझाने का मीरा करोड़ों यत्न करती हैं। लोकलाज और कुल की मर्यादा के बंधनों की एक न सुनती हुई उनके प्रति प्रेम के घुंघरू पग में बांध कर मीरा नाच उठती है। इस प्रकार मीरा अपने रसिक के प्रति अपनी पुरानी प्रीत को जांचती है। मीरा के गिरधर नागर में भक्त वत्सल प्रभु की करूणा के साथ-साथ लीला पुरूषोत्तम का रसित स्वरूप भी शामिल है। उनकी प्रीति से भक्त का मन उज्जवल रस से परिपूर्ण और लोकोपकारी हो उठता है। उसमें साधु तथा सुन्दर को पहचानने का विवेक आ जाता है। मीरा कहती हैं --

भाई सांवरे रंग राची ।। टेक।।
सज सिंगार बांध पग घूंघर, लोकलाज तज नाची।
गया कुमत लयां साधों संगत श्याम प्रीत जग सांची।

ऐसे गिरधर मीरा के लिए अनमोल हैं। मीरा ने उन्हें तन-मन जीवन वार कर पाया है। कृष्ण को पाकर मीरा ने संसार से पूरी तरह से मुंह मोड़ लिया है। उनके अनुसार यह संसार, इसके सुख वैभव छोटे-मोटे तालाबों, झीलों जैसे हैं, जबकि कृष्ण महासागर हैं। उनके आगे तो गंगा-यमुना की भी बिसात नहीं। कृष्ण की सहज कृपा से मीरा उनके दरबार के महत्वपूर्ण सरदारों में से एक हो गयी हैं। कहती हैं --

'हेल्या-मेल्याँ कामणा म्हारे, म्हा मिल्या सरदाराँ री।
कामदाराँ सूं काम णाँ म्हारे, जावा म्हा दरबाराँरी।'

इस प्रकार मीरा यहां सामंती राज परिवार से मिले सत्ता और अधिकार के अनुभवों से अपने आराध्य के परम् अधिकारी स्वरूप का निर्माण करती है। इस प्रकार मीरा के कृष्ण में भक्त कवियों द्वारा निर्मित कृष्ण छवि का प्रभाव तो है, किंतु अपने भिन्न अनुभव लोक से वे उन्हें कई नये रूप भी प्रदान करती हैं। मीरा के प्रभु जीवमात्र की सद्गति के प्रेरक सर्वव्याप्त और अविनाशी है। अपने आराध्य का स्पष्ट परिचय देती हुई मीरा कहती है --

'म्हारो गोकुल रो ब्रजवासी ।।टेक।।
ब्रजलीला लख जण सुख पावाँ, बजवणताँ सुखरासी।'

वे पुन: कहती हैं कि उनके अविनाशी प्रभु ने नंद यशोदा के पुण्य से उनके घर जन्म लिया है। अर्थात् उनके प्रभु में जन्म-मरण से परे होने का वही महात्म्य है जिसे निर्गुण संतों ने गाया है। ऐसे कृष्ण से मीरा अपने प्रेम संपन्न भावलोक में निर्विघ्न मिलती हैं। उसके रंग में रची हुई नाचती गाती हैं। वे साफ कहती हैं कि गिरधर नागर के रूप में उन्हें अचल-अविनाशी सुहाग प्राप्त हुआ है। लोकनिंदा के विष ने मीरा की भक्ति को तपा कर खरे सोने सा दमका दिया है। गिरधर की सच्ची प्रीत से मीरा को कोई प्रलोभन डिगा नहीं पाया। हरि के रूठने की तो वे कल्पना भी नहीं कर सकतीं। हरि की कृपा से ही तो उनके जीवन का समस्त विष अमृत हो गया है। ऐसे करूणानिधान प्रभु के समक्ष कभी-कभी मीरा कातर भी हुई हैं। ऐसे प्रसंगों में उन्होंने प्रभु को साभिप्राय 'गिरधर नागर' या 'गोवरधन गिरधारी' कहा है। द्रुपद सुता, 'सुदामा', 'शबरी', 'गजराज', 'गणिका', 'करमाबाई,' आदि अनेक भक्तों को सहज ही मुक्ति देने वाले प्रभु के सम्मुख अतिभाव से प्रस्तुत होती हुई मीरा उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना भी करती है। इसमें ही वे अपनी प्रीति का निर्वाह देखती है। मीरा ने इस प्रकार कृष्ण के प्रति अपने प्रेम की दृढ़ता और एक निष्ठता को अनेक प्रकार से कहने के साथ-साथ कृष्ण के स्वयं के प्रति प्रेम के प्रमाण भी चाहे हैं। वे कहती हैं --

'सांवरो म्हारो प्रीत विभाज्यो जी।'

कृष्ण के लोक उद्धारक स्वरूप की नाना छवियों के साथ मीरा ने उनके लोकरंजक स्वरूप को भी निर्मित किया है। इस संदर्भ में वे ब्रजबिहारी की नाना लीलाओं का वर्णन करती हैं। श्रीकृष्ण का वंशीवादन, चीरहरण, नागनथैया, पनघट लीला, आदि अनेक लीलाओं को वे नये रंग में प्रस्तुत करती हैं। यहां कृष्ण का नटवर नागर स्वरूप व्यक्त हुआ है।

इस प्रकार मीरा के 'गिरधर नागर' की छवि उनके जीवन संघर्ष से शक्ति प्राप्त करने वाली एकनिष्ठ माधुर्यभाव की भक्ति द्वारा निर्मित हुई है। वे परमब्रह्म परमेश्वर के समान जगत के उद्धारक और अविनाशी होने के साथ मीरा का अचल अविनाशी सुहाग भी है।

11.7 मीरा की विरह भावना

मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति में सबसे प्रगाढ़ और मार्मिक स्वर विरह का है। उन्होंने ऐसा प्रियतम ही चुना है, जिससे लौकिक जगत में मिलन संभव नहीं। इसलिए निरंतर दृढ़ होते हुए उनके इस प्रेम की अनिवार्य परिणति विरह ही है। उनके कठिन संघर्षपूर्ण जीवन के अभावों ने एक ओर तो उनकी भक्ति को खरे कंचन का सा स्वरूप दिया तो दूसरी ओर यह पीड़ा कृष्ण विछोह की उस अलौकिक अनुभूति के साथ एकसार हो गयी जो जितनी आध्यात्मिक थी उतनी ही लौकिक भी। मीरा की विरहाभिव्यक्ति में अलौकिक प्रियतम के प्रति प्रेम विवशता तथा उन्हें न पा सकने की पीड़ा आदिभाव बहुत तीव्रता के साथ उभरे हैं। ऐसे में वे प्रिय से नैकट्य और उनके प्रति समर्पण में बाधक राणा, राणाकुल और रूढ़िवादी समाज के प्रति अपना धिक्कार स्पष्ट व्यक्त करती है। ये संदर्भ उनके विरह को मानवीय गहराई और

विश्वसनीयता प्रदान करते हैं। मीरा की भक्ति जितनी उनके अन्तर्जगत में घटित होती है उतना ही वह बाह्यजगत को भी अपने अनुरूप बनाने के लिए संघर्ष करती हैं। राणा विक्रमाजीत सिंह का संकट यही है। भक्ति रस में डूबी हुई मीरा साधु समाज का वह समां बांध देती हैं कि स्त्रीविरोधी सामंती समाज अपनी सारी वर्जनाओं के बावजूद उसके सात्विक वेग के आगे एक पल भी ठहर नहीं पाता। मीरा अपने प्रभु के प्रति व्यक्त ही नहीं हुई, अपितु उन्होंने उस अलौकिक को कई रंग-रूप प्रदान किये। सामंती नैतिकताओं की कतई परवाह न करते हुए अपने वैधव्य के लिए निर्धारित विधि निषेधों को ताक पर रखते हुए मीरा ने गिरधर नागर को स्वकीया भाव से पूजा और चाहा। उनके लिए श्रृंगार किया, सेज सजाई। उनसे रूठी और उनसे मान भी गई। मीरा की भक्ति के समान ही उनके विरह में भी स्वानुभूति का वह उत्कट रंग है जिसे विरह भावना के शास्त्रीय रूप-स्वरूप या दशाओं में बांध कर नहीं देखा जा सकता।

लीला पुरूष परब्रह्म श्रीकृष्ण मीरा के प्रियतम हैं। ऐसे प्रियतम से मिलन केवल स्वप्न में ही संभव है। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के स्वप्नों की परिणति या तो उस स्वप्न में प्राप्त मिलन सुख के मंदिर भाव में डूब कर उसके वर्णन में होती है अथवा इस प्रकार के मिलन का उद्‌भव वास्तविक जीवन में घटित विद्रोह की पीड़ा को अधिक गहरा कर जाता है। स्वप्न या कल्पना में पाये संयोग के अल्प संयोगों को भी मीरा ने डूब कर व्यक्त किया है। यही वह उनकी सबसे मूल्यवान थाती है जिसके बल पर वह प्रिय वियोग के साथ-साथ अपने विरोध में खड़े कुल-कुटुंब और समाज के सारे अत्याचारों का सामना करती है। स्वप्न में कृष्ण मिलन का वर्णन करती हुई मीरा कहती हैं --

'भाई म्हाणे सुपणा मां परव्या दीनानाथ।
छप्पन कोटां जणां पधार्‌या दूल्होसिरी ब्रजनाथ।
सुपणा मां तोरण बंध्यारी सुपणामां गह्या हाथ।
सुपणा मां म्हारे परण गया पायां अचल सोहाग।
मीरा रो गिरधर मिल्यारी, पुरब जणम रो भाग।

इस प्रकार मीरा के इस अद्‌भुत स्वप्न में गिरधर नागर ने मीरा को छप्पन करोड़ देवताओं की साक्षी में ब्याह लिया है। ऐसे अलौकिक सुहाग की स्वामिनी मीरा ने स्वयं को पूरी तरह से गिरधर के रंग में रंग लिया है। उनके प्राणों में प्रतिपल ऐसे प्रियतम की प्रतीक्षा है। वे अपने रोम-रोम से गिरधर के आगमन का संदेश सुनना चाहती हैं, किन्तु ऐसे सुख के संयोग उन्हें बहुत कम प्राप्त हुए हैं। यही कारण है कि इन गिनती के संयोग क्षणों में वे आनंद से नाच उठती है। कहती हैं --

'सावन मां, उमग्यो म्हारो मण री मणक सुण्या हरि आवण री।'

और उनके लिए यह सावन जिसने विरह को अतिदीर्घ और असह्य बनाया है अपने समस्त वेभव समेत प्रिय हो उठता है। प्रिय के आने पर जैसे उनकी युगों-युगों की प्रतीक्षा पूरी होती है। वे कृष्ण से सदैव अपने नेत्रों के आगे बने रहने का अनुरोध करती हैं। ऐसे रसिक शिरोमणि करूणानिधान प्रिय से पल भर का भी बिछोह मीरा को सह्य नहीं है, किन्तु यह विछोह ही जैसे उनका एक मात्र प्राप्य है। वास्तविकता भी यही है। मीरा का प्रिय से मिलन केवल उनके अन्तर्जगत में ही संभव हुआ है। लौकिक जगत में प्रिय का चिर वियोग ही उनके जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है। यहां प्रिय का साहचर्य या उनसे अपने प्रेम का प्रतिदान उन्हें प्राप्त नहीं हो पाया है। यह उनके कृष्ण के प्रति समर्पित जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है। चिर विरह के इस दुःख के सोने का सुहागा उनके प्रति बैर रखने वाले स्वजन और समाज हैं। इन अनुभवों से मीरा का अपने एक मात्र आश्रम व अवलंब से विछोह का दुःख और असह्य हो उठता है। विरह जनित भावस्थिति में उनमें संयोग की स्थिति का औत्सुक्य और चचंलता भावों की गहराई और प्रगाढ़ता में बदल जाते हैं। प्रेम यहां अधिक व्यक्त व्यापक और उदार होता दिखाई देता है। यहां मीरा अपनी घनीभूत पीड़ा के साथ जीवन और जगत के कण-कण के प्रति संबोधित हैं। उनकी आत्माभिव्यक्ति के इस रंग में उनका अद्‌भुत आत्म प्रसार लक्षित किया जा सकता है। इस विरह में मीरा की मनोदशाओं के विविध रूप प्राप्त होते हैं।

अलौकिक प्रियतम के प्रति निवेदित मीरा की विरहाभिव्यक्ति में कभी-कभी निर्गुण संतों के रहस्यवादी स्वर की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। ऐसे प्रसंगों में उनकी प्रेम विफलता में आत्मा और परमात्मा के बीच जगत में घटित होने वाले विछोह का अर्थ भी देखा जा सकता है। मीरा ने यहां 'भव प्रवंच' को संतों के से विराग से ही देखा है। वे कहती हैं --

म्हारे आज्यो जी रामां, थारे आवत आस्यां सामां ।।टेक।।
तुम मिलियां में बोही सुख पाऊं, सो मनोरथ कामां।
तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज धामां।
मीरा के मन अवर न माने चाहे सुन्दर स्यामां।।

कबीर की तरह मीरा को भी विरह भुजंग डस गया है। कहती हैं --

विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिवजावै।

विरह ने मन और काया पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया है। उन्हें देश-काल की कोई सुध-बुध नहीं है। सारी रात आंखों में कट जाती है। प्रिय को पत्र लिख भेजना चाहती है, किन्तु लिख नहीं पातीं। हाथ कांपते हैं, आंखों से आंसुओं की झड़ी लगी है। कोई ऋतु, कोई उत्सव, कोई त्यौहार अच्छा नहीं लगता। कहीं-कहीं मीरा ने विरह वर्णन की पारंपरिक शैली का भी उपभोग किया है। उनके पदों में वर्षा ऋतु के उद्दीपक रूप में अनेक चित्र मिलते हैं। दादुर, मोर, पपीहा को वे उनकी प्रिय विछोह को उद्दीप्त करने वाली पारंपरिक भूमिका में ही देखती हैं। पपीहे से तो वे अत्यधिक दुःखी हो जाती हैं। उसे फटकारती हुई कहती हैं --

'पपइया रे पिव की वाणी न बोल ।।टेक।।
सुणि पावेली विरहिणी रे, भारो राखेली पांख मरोड़।'

इसी पपीहे पर प्रिय से संयोग की स्थिति में वे निछावर हो जाने की बात कहती है। मीरा ने विरह को 'बारहमासा' में भी व्यक्त किया है तथा इसके अन्तर्गत वे प्रत्येक ऋतु की विरह के लिए दुःखदाई हो जाने वाली भूमिका का वर्णन करती है --

जेठ महीने जल बिणा पंछी दुख होई, हो।
मोर असाढ़ा कुरलहे, धन चात्रक सोई, हो।
सावण में झड़ लागियो, सखि तीजा खेले हो।
भादवै नदिया बहै, दूरी जिन मेले हो।

विरह की अतिपीड़ा में वे प्रिय की कठोरता के प्रति उलाहनों में व्यक्त होती हैं। उसे अत्यन्त कठोर हृदय वाला निर्भीही भी कहती हैं। पीड़ा का आधिक्य उनके लिए इतना असह्य है कि वे प्राण भी तज देना चाहती हैं। कहती हैं --

'विरह की मारी मैं बन डोलूं प्राण तज् करवतल्यूं कासी।'

इस 'विरह समुंद' का पारे लगाने वाला 'हरि अविनाशी' ही है। मीरा उसके कारण 'जोगन' हो जाने की बात भी कहती है। उसी के लिए उन्होंने घर, संसार, स्वजन सब त्याग दिये हैं।

ये स्वजन मीरा की अनुभुतियों से सर्वथा अपरिचित और अनात्मीय हैं। वे मीरा की भाव विह्वलता की हंसी उड़ाते हैं। मीरा प्रिय के प्रेम और वियोग की पीड़ा में दीवानगी की हद तक डूब जाती हैं। वे अपनी पीड़ा की नाना अनुभूतियों के साथ अति मुखर हैं और कुछ पदों में ढिंढोरा पीट कर अपने प्रेम दीवानी होने की खबर देने के साथ-साथ प्रिय वियोग के लिए अभिशप्त प्रीति में किसी अन्य के न पड़ने की बात कहना चाहती हैं। यह वस्तुतः प्रेम की धीर की अतिशयता का ही व्यंजनापूर्ण कथन है।

इस प्रकार मीरा का विरह, प्रिय विछोहजन्य पीड़ा की सघन मार्मिक अनुभूतियों की बड़ी वैविध्यपूर्ण और विश्वसनीय अभिव्यक्ति है। इसके अन्तर्गत विरह वर्णन के पारंपरिक रूपों का उपयोग करने के बावजूद मीरा उनके परिपाटीबद्ध रूपों का अनुकरण नहीं करती है।

11.8 सारांश

इस प्रकार मीरा का काव्य मध्ययुगीन भक्ति धारा के सर्वोत्तम सार की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ लोकोन्मुख है। कबीर, रैदास, तुलसी आदि कवियों के समान मीरा की ईश्वर भक्ति उनकी वैयक्तिक मुक्ति का साधन भर नहीं है। मीरा अपने समय के समाज के सामाजिक-आर्थिक अन्तर्विरोधों के प्रति सजग हैं। वे मध्ययुगीन सामंती प्रवृत्तियों के प्रति संरक्षणशील राज परिवार की कुलवधू हैं। ऐसे परिवार के लिए नारी स्वाधीनता सर्वथा असह्य है। इसके अतिरिक्त मीरा राणा कुल की विधवा स्त्री है। वैधव्य के साथ ही समूचे समाज की स्त्री के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। राणा विक्रमाजीत भी अपने बड़े भाई की पत्नी मीरा के प्रति बहुत सजग और कठोर है। वह उनकी भगवद्भक्ति और साधु संगत के प्रति अनुदार है। इस प्रकार की समस्त बाधाओं से जूझती हुई मीरा की कृष्ण भक्ति उत्तरोत्तर दृढ़ और एकनिष्ठ होती है। वे कृष्ण के लोकरक्षक लोकरंजक स्वरूप का विधान करती हैं। वे अपने आराध्य की छवि का निर्माण करते हुए सगुण-निर्गुण काव्य परंपरा के परिपाटीबद्ध स्वरूपों का अतिक्रमण भी करती हैं। मीरा का विरह उनकी कृष्ण भक्ति की परीक्षा है। सामंती रूढ़ियों द्वारा प्रेरित अत्याचारों के विष तथा अलौकिक कृष्ण के विरह की अग्नि द्वारा परीक्षित मीरा का व्यक्तित्व मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का अनमोल रत्न है।

11.9 अभ्यास/प्रश्न

1) मीरा के काव्य के संदर्भ में मध्ययुगीन सामंती अन्तर्विरोधों का विश्लेषण कीजिए।

2) मीरा के काव्य में पुरूषसत्तात्मकता और रूढ़िवादिता का तीखा विरोध मिलता है, कथन की विवेचना कीजिए।

3) मीरा की भक्ति में उनके जीवनानुभवों की सच्चाई और मार्मिकता है, कथन से आप कहां तक सहमत हैं?

4) कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति का वैशिष्ट्य निर्धारित कीजिए।

5) मीरा के गिरधर नागर की छवि ईश्वर के सगुण-निर्गुण स्वरूप का अतिक्रमण करती है, कथन से अपनी सहमति का उल्लेख कीजिए।

6) मीरा के विरह में उनके लौकिक जीवन के अभाव के पक्ष की गहरी भूमिका है, इस कथन के प्रकाश मे उसकी विशेषताओं का निर्धारण कीजिए।